प्रकाशन तिथि : 26 जनवरी 2015, मूल्य 3 रुपये, वर्ष 33, अंक 7, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी
(125वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (379)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये रेनबो ऑफसेट प्रिण्टर्स, बाईस गोदाम, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन :(0141)2705581, 2707458
फैक्स : 2704127
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	3 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10200**

मैं मात्र ज्ञाता हूँ

मैं स्वभाव से ही ज्ञायक होने के कारण विश्व के साथ मेरा मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है; कर्ता-कर्म या स्व-स्वामी आदि कोई सम्बन्ध है ही नहीं। कर्म ज्ञेय और मैं ज्ञायक हूँ। शरीर की निरोग या रोग चाहे जैसी अवस्था हो वह मुझे अच्छी बुरी-नहीं है परन्तु ज्ञेयरूप है और मैं ज्ञायक हूँ। अरे ! विकार हो वह भी ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ। तीनलोक के नाथ विनय करने योग्य हैं और मैं विनय करनेवाला हूँ ऐसा भी नहीं है। तीर्थंकरदेव भी विश्वमें-ज्ञेयमें आते हैं और मैं ज्ञायक हूँ। समस्त विश्व ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ। इसके सिवाय विश्व में मेरा स्व और मैं उसका स्वामी ऐसा स्व-स्वामी सम्बन्ध नहीं है; मैं कर्ता और वे मेरे कर्म ऐसा कर्ता-कर्म सम्बन्ध भी विश्व के साथ नहीं है। मेरा तो एकमात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध ही है और वह भी व्यवहार है; परमार्थ से तो मैं ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय हूँ, इसलिए मुझे किसी के प्रति ममत्व नहीं है। 187

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ -43

वीतराग-विज्ञान

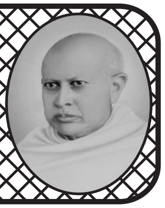

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2541) 379 अंक : 7

चरखा चलता नाहीं...

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना।
पग खूंटे दो हालन लागे, उर मदरा खखराना।
छीदी हुई पाखड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना।।
चरखा चलता नाहीं... ।।१।।
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूटै।
शबद सूत सूधा नहिं निकसै, घड़ी घड़ी पल टूटै।।
चरखा चलता नाहीं... ।।२।।
आयु मालका नहीं भरोसा, अंग चला-चल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, बैद बाढही हारे।।
चरखा चलता नाहीं... ।।३।।
नया चरखला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावैं।।
चरखा चलता नाहीं... ।।४।।
मोटा-महीं कातकर भाई ! कर अपना सुरझेरा।
अंत आग में ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा।।
चरखा चलता नाहीं... ।।५।।

- कविवर पण्डित भूधरदासजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(97) जितना काल पर के लिए व्यतीत करता है, उतना काल यदि स्व के लिए बिताये तो कल्याण हुए बिना न रहे। भाई! अनंतकाल में यह महादुर्लभ मनुष्यभव मिला, उसमें यदि कल्याण नहीं किया तो कहाँ करेगा?

(98) जिसे जिसकी रुचि हो, वह बारम्बार उसकी भावना करता है और भावनानुसार भवन होता है। भावना से भवन होता है अर्थात् जैसी भावना वैसा भवन। निरन्तर शुद्ध आत्मस्वभाव की भावना भाने से वैसा भवन (परिणमन) भी हो जाता है। अत: जब तक आत्मा की यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव न हो, तब तक सत्समागम से प्रीतिपूर्वक आत्मा की बात का श्रवण, मनन और भावना करनी चाहिए। उस भावना से ही भव्य जीवों के भव का नाश होता है।

(99) अहो! संत मुनि आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दकुण्ड में निमग्न हैं, एकदम वीतरागता बढ गई और राग बिलकुल कम रह गया है, वहाँ बाह्य में वस्त्रादि भी स्वयं छूट गए हैं और शरीर की सहज दिगम्बर निर्विकार दशा हो गई है।

(100) अहो ! एक मक्खी भी मिश्री और फिटकरी के स्वाद का विवेक करके फिटकरी को छोड़ती है और मिश्री का स्वाद लेने को चोंटती है। तो जिसे अपना कल्याण करना है – ऐसे जीव को अपना त्रिकाली स्वभाव क्या है और विकार क्या है? इसका बराबर विवेक करना चाहिए।

(101) भाई! आत्मकल्याण करने का यह मौसम है। जिसप्रकार मौसम आने पर वृक्ष फल फूलों से भर जाते हैं, स्वाति बिन्दुओं से मोती उत्पन्न होते हैं; उसी प्रकार चैतन्य में सम्यग्दर्शनादि रत्न उत्पन्न होने का यह मौसम है।

(102) आगे बढते हुए मुमुक्षु का एक मुख्य लक्षण यह है कि उसे तत्त्व में अधिक से अधिक अद्भुतता भासित होती जाती है। यदि ऐसा न हो तो वह कहीं न कहीं अटका अवश्य है। अनुभव के पहले मुमुक्षु की कहीं न कहीं अटक तो है ही, नहीं तो उसे अनुभव होना चाहिए। मुमुक्षु जीव की भूल तो अत्यन्त सूक्ष्म है, जबकि अन्य जीव तो स्थूल भूलों में ही अटके हैं।

(103) कोई कुतर्क से पुण्य द्वारा धर्म मनाये तो ज्ञानी उसे सत्य नहीं मानते; किन्तु कहते हैं कि जिसप्रकार विष खाने से कभी अमृत की डकार नहीं आ सकती; उसीप्रकार जिस भाव से बंधन हो उस भाव से कभी मोक्ष तो नहीं होता; किन्तु मोक्षमार्ग का प्रारम्भ भी उससे नहीं होता।

(104) आत्मार्थी जीव अपने आत्महित के लिए हमेशा स्वाध्याय-चिन्तन जरूर करता है। 'मैं ज्ञायक जगत से अत्यन्त भिन्न हूँ, जगत के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, जगत के किसी काम का बोझा मेरे ऊपर नहीं है, मैं असंग चैतन्यतत्त्व हूँ' – इसप्रकार निवृत्त होकर रोज घड़ी दो घड़ी तो आत्मा का चिन्तन-मनन अवश्य करना चाहिए। सत्पुरुषों के द्वारा बताये गये आत्मा का बारम्बार अन्तर में चिन्तन-मनन करना ही अनुभव का उपाय है।

(105) सम्यग्दर्शन के सन्मुख होने वाले जिज्ञासु जीव को अपना कार्य करने का अत्यन्त हर्ष होने से वह अन्तरंग प्रीति से उसका उद्यम करता है। 'अपना कार्य' अर्थात् सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन करना – यह जिज्ञासु जीव के जीवन का ध्येय है, अत: सम्यग्दर्शन के लिए उल्लासपूर्वक निरन्तर प्रयत्न करता है। आत्मकार्य में निरन्तर उल्लासमान आत्मार्थी जीव अल्पकाल में सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

– वीतराग-विज्ञान : अप्रैल 1985, पृष्ठ 10-12

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

देवों के इन्द्र-सामानिक आदि दश भेद

भवनवासी आदि चार प्रकार के देवों के असुरकुमार, नागकुमार आदि अवान्तर भेद भी होते हैं। तथा जिसप्रकार मनुष्यों में व्यवस्था की दृष्टि से राजा, मंत्री, सेनापति, सेना, पुलिस आदि भेद होते हैं; उसीप्रकार **देवों में भी इन्द्र, सामानिक आदि के भेद पाये जाते हैं।** अब उनकी चर्चा करते हैं –

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपन्नपर्यन्ताः ।।३।।

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ।।४।।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ।।५।।

कल्पोपन्न देवों तक चार निकायों के क्रमशः दश, आठ, पाँच और बारह भेद होते हैं। तात्पर्य यह है कि भवनवासी देव दश प्रकार के, व्यन्तरदेव आठ प्रकार के, ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के और कल्पवासी देव बारह प्रकार के होते हैं।

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक – ये दश प्रकार हैं।

व्यन्तरों और ज्योतिषी देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते; उनके शेष इन्द्रादि आठ प्रकार होते हैं।

भवनवासी आदि के अवान्तर भेदों की चर्चा नाम सहित आगे के सूत्रों में पृथक् से होगी।

अतः अब यहाँ इन्द्रादि दश प्रकारों की चर्चा करते हैं –

१. जो अन्य देवों में नहीं पाये जानेवाले असाधारण गुणों से शोभित होते हैं; जिनकी आज्ञा चलती है और जो ऐश्वर्यवाले हैं; वे **इन्द्र** हैं।

२. आज्ञा और ऐश्वर्य को छोड़कर जो स्थान, आयु, वीर्य, परिवार और भोगोपभोग आदि में इन्द्रों के समान हैं; उन्हें **सामानिक** कहते हैं। ये लोग राजा के पिता, गुरुओं और उपाध्यायों के समान होते हैं।

३. जो मंत्री और पुरोहितों के समान हित चाहनेवाले होते हैं; वे त्रायस्त्रिंश हैं। ये तैंतीस ही होते हैं; इसलिए **त्रायस्त्रिंश** कहलाते हैं।

४. जो इन्द्रसभा में मित्रों और स्नेहीजनों के समान बैठते हों; वे **पारिषद** हैं। ये इन्द्र की सभा के सदस्य हैं।

५. जो अंगरक्षकों के समान हों, वे **आत्मरक्ष** कहलाते हैं।

६. जो अर्थचरों के समान रक्षक हैं; वे लोक का पालन करनेवाले **लोकपाल** हैं।

७. जो पदाति (पैदल) घुड़सवार आदि सात प्रकार की सेना के समान होते हैं; वे **अनीक** कहे जाते हैं।

८. जो नागरिकों के समान फैले हुए रहते हैं; वे **प्रकीर्णक** हैं।

९. जो दासों के समान वाहन (ऐरावत हाथी) आदि कार्यों में प्रवृत्त होते हैं; वे **आभियोग** हैं।

१०. पापकर्मों की बहुलतावाले **किल्विषिक** कहलाते हैं।

उक्त दश प्रकारों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल – ये दो प्रकार व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के नहीं होते ।।३-५।।

इन्द्र कितने

उक्त चार निकाय के देवों में कहाँ-कहाँ कितने-कितने इन्द्र होते हैं ? यह आगामी सूत्र में दिया जा रहा है।

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।।६।।

पहले के दो निकायों में दो-दो इन्द्र होते हैं।

तात्पर्य यह है कि पहले के दो निकायों अर्थात् भवनवासी और व्यन्तरों के सभी प्रकारों में दो-दो इन्द्र होते हैं। इसप्रकार भवनवासियों में बीस (२०) और व्यन्तरों में सोलह (१६) इन्द्र होते हैं।

भवनवासियों में –

१. **असुरकुमारों के** चमर और वैरोचन ये **दो इन्द्र** होते हैं।

२. **नागकुमारों के** धरणानन्द और भूतानन्द ये **दो इन्द्र** हैं।

३. **विद्युत्कुमारों के** घोष और महाघोष ये **दो इन्द्र** हैं।

४. **सुपर्णकुमारों के** वेणुदेव और वेणुधारी ये **दो इन्द्र** हैं।

५. **अग्निकुमारों के** अग्निशिखी और अग्निवाहन ये **दो इन्द्र** हैं।

6. **वातकुमारों के** वेलंब और प्रभंजन ये दो इन्द्र हैं।

७. **स्तनितकुमारों के** हरिषेण और हरिकान्त ये **दो इन्द्र** हैं।

८. **उदधिकुमारों के** जलकान्त और जलप्रभ ये **दो इन्द्र** हैं।

९. **दीपकुमारों के** पूर्ण और वशिष्ट ये **दो इन्द्र** हैं।

१०. **दिक्कुमारों के** अमितगति और अमितवाहन ये **दो इन्द्र** हैं।

व्यन्तरों में –

१. **किन्नरों के** किम्पुरुष और किन्नर ये **दो इन्द्र** हैं।

२. **किम्पुरुषों के** सत्पुरुष और महापुरुष ये **दो इन्द्र** हैं।

३. **महोरगों के** महाकाय और अतिकाय ये **दो इन्द्र** हैं।

४. **गन्धर्वों के** गीतरति और गीतयशा ये **दो इन्द्र** हैं।

५. **यक्षों के** मणिभद्र और पूर्णभद्र ये **दो इन्द्र** हैं।

६. **राक्षसों के** भीम और महाभीम ये **दो इन्द्र** हैं।

७. **भूतों के** सुरूप और प्रतिरूप ये **दो इन्द्र** हैं।

८. **पिशाचों के** काल और महाकाल ये **दो इन्द्र** हैं।।६।।

देवों के मैथुन संज्ञा

इन देवों के स्पर्शन इन्द्रियजन्य सुख किसप्रकार होता है ?– आगामी सूत्रों में यह बताते हैं।

कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।।७।।

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः।।८।।

परेऽप्रवीचाराः।।९।।

ईशान स्वर्ग तक कायप्रवीचार होता है। उसके आगे शेष स्वर्गों में क्रमशः स्पर्श, रूप, शब्द और मन से प्रवीचार होता है। इनके अतिरिक्त ऊपर के अहमिन्द्रों में प्रवीचार होता ही नहीं है।

मैथुन सेवन की क्रिया को प्रवीचार कहते हैं। ईशान नामक दूसरे स्वर्ग तक काय से प्रवीचार होता है। तात्पर्य यह है कि भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवों के तथा कल्पवासी देवों में सौधर्म और ईशान – इन दो स्वर्गों में; **मनुष्यों के समान शारीरिक क्रियारूप मैथुन सुख होता है, स्पर्शन इन्द्रियजन्य सुख होता है।**

सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देव; देवांगनाओं के स्पर्श मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं और इसीप्रकार वहाँ की देवियाँ भी देवों के **स्पर्श मात्र से संतुष्ट हो जाती हैं।** ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्ग के देव; देवांगनाओं के शृंगार, आकृति, विलास, चतुराई और मनोज्ञ वेष तथा **मनोज्ञ रूप के देखनेमात्र से सन्तुष्ट रहते हैं।** शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्ग के देव; देवांगनाओं के मधुर संगीत, कोमल हास्य, ललित कथन और भूषणों के **कोमल कलरव सुननेमात्र से ही संतुष्ट रहते हैं।** तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्ग के देव; अपनी अंगनाओं का **मन में संकल्प करने मात्र से ही संतुष्ट होते हैं।**

इसके ऊपर के कल्पातीत देवों के प्रवीचार क्रिया होती ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि सोलह स्वर्गों के ऊपर नव ग्रैवेयकों, नव अनुदिशों और पाँच अनुत्तर विमानों के अहमिन्द्रों के मन में भी स्पर्शन इन्द्रियजन्य विषय की कामना उत्पन्न नहीं होती है। वासनाजन्य पीड़ा के अभाव से वे सहज ही सुखी हैं, **वहाँ देवांगनायें होती ही नहीं।।७-९।।**

भवनवासी और व्यन्तर देवों के प्रकार

अब दश प्रकार के भवनवासी और आठ प्रकार के व्यन्तरों के प्रकार गिनाते हैं; जो इसप्रकार हैं –

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः।।१०।।

व्यन्तराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः।।११।।

भवनवासी देव दस प्रकार के हैं – असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

व्यन्तरदेव आठ प्रकार के हैं – किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व,

यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच।

जिनका स्वभाव भवनों में वास करने का विशेष हो, **वे भवनवासी हैं।** इन भवनवासियों के सभी भेदों में कुमार शब्द लगा है; क्योंकि इनका स्वभाव, वेशभूषा, वाहन, यान और क्रीड़ा आदि में कुमारों (किशोरों) के समान होता है। **जिसप्रकार की चंचलता मनुष्यों में कुमारावस्था में पाई जाती है; उसीप्रकार की प्रवृत्तियाँ उनमें जीवनभर पाई जाती हैं। यही कारण है कि उनके नामों में कुमार शब्द का प्रयोग किया गया है।**

यह तो पहले बताया ही जा चुका है कि इनमें से असुरकुमारों के भवन अधोलोक की **रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकभाग में हैं और शेष नौ प्रकारों के भवन खरभाग में है।**

विभिन्न स्थानों पर रहने के कारण व्यन्तरों को व्यन्तर कहते हैं। व्यन्तरों के रहने के स्थानों के बारे में बताया जा चुका है।।१०-११।।

ज्योतिषियों के प्रकार

भवनवासी और व्यन्तरों के प्रकार स्पष्ट हो जाने के बाद अब ज्योतिषियों के प्रकार बताते हैं –

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ।।१२।।

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके।।१३।।

तत्कृतः कालविभागः।।१४।।

बहिरवस्थिताः।।१५।।

ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के होते हैं – १. सूर्य, २. चन्द्रमा, ३. ग्रह, ४. नक्षत्र और ५. सर्वत्र फैले हुए तारे।

ये ज्योतिषी देव मनुष्यलोक (मध्य लोक के ढाईद्वीप) में मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए निरन्तर गति करते रहते हैं, घूमते रहते हैं।

काल का विभाग इन ज्योतिषी देवों के गमन के आधार पर ही होता है।

ढाईद्वीप के बाहर ये ज्योतिषी देव स्थिर रहते हैं।

इनके आवास के संदर्भ में आचार्य पूज्यपाद सर्वार्थसिद्धि नामक टीका ग्रंथ में एक गाथा उद्धृत करते हैं, जो इसप्रकार है –

णउदुत्तरसत्तसया दससीदी चदुगं तियचउक्कं।
ताराविससिरिक्खा बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी।।

इस पृथिवी-तल से सात सौ नब्बे योजन ऊपर **तारा** हैं। ताराओं के दस योजन ऊपर **सूर्य** हैं। सूर्य के अस्सी योजन ऊपर **चन्द्रमा** हैं।

चन्द्रमा के चार योजन ऊपर **नक्षत्र** और नक्षत्रों के चार योजन ऊपर **बुध** हैं।

बुध से तीन योजन ऊपर **शुक्र** हैं। शुक्र से तीन योजन ऊपर **बृहस्पति** हैं। बृहस्पति से तीन योजन ऊपर **मंगल** हैं और मंगल से तीन योजन ऊपर **शनि** है।

उक्त कथन आचार्य पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि नामक टीका के आधार से प्रस्तुत किया गया है। आचार्य अकलंकदेव कृत राजवार्तिक में इससे कुछ हटकर बात है; जो इसप्रकार है –

इस भूमितल से सात सौ नब्बे योजन ऊपर ज्योतिर्मण्डल में सबसे नीचे **तारागण** हैं। उससे दश योजन ऊपर **सूर्य,** उससे अस्सी योजन ऊपर **चन्द्रमा,** उससे तीन योजन ऊपर **नक्षत्र,** उससे तीन योजन ऊपर **बुध,** उससे तीन योजन ऊपर **शुक्र,** उससे तीन योजन ऊपर **बृहस्पति,** उससे चार योजन ऊपर **मंगल** और उससे चार योजन ऊपर **शनैश्चर** हैं।

इसीप्रकार का अन्तर दोनों में उद्धृत गाथाओं में भी है।

एक बात यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य है कि जहाँ भी इसप्रकार का अन्तर हमें दिखाई दिया है; वहाँ हमने सर्वार्थसिद्धि के कथन को मुख्यता प्रदान कर उसका उल्लेख प्रमुखरूप से किया है।

इसतरह एक सौ दस योजन की मोटाई में सब ज्योतिषी देव रहते हैं तथा तिर्यक् रूप से घनोदधि वातवलय तक फैले हुए हैं।

इनमें चन्द्रमा इन्द्र है और सूर्य प्रतीन्द्र हैं।

ये ज्योतिषी देव मनुष्य लोक में अर्थात् ढाईद्वीप में मेरु पर्वतों से ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन दूर रहकर उसके चारों ओर प्रदक्षिणारूप निरन्तर घूमते रहते हैं। जम्बूद्वीप में **दो,** लवण समुद्र में **चार,** धातकीखण्डद्वीप में **बारह,** कालोदधि में **ब्यालीस** और पुष्कराद्धं में **बहत्तर चन्द्रमा** हैं। इसप्रकार ढाईद्वीप में **एक सौ बत्तीस चन्द्रमा** हैं।

एक चन्द्रमा के परिवार में एक सूर्य, अठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और छियासठ

हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं।

काल दो प्रकार का होता है – १. निश्चय काल और २. व्यवहार काल। घड़ी, मुहूर्त, दिन-रात, पक्ष, मास, वर्ष आदि को व्यवहार काल कहते हैं। इस व्यवहार काल का व्यवहार इन चन्द्रमा-सूर्य की गति से होता है। **दिन और रात सूर्य की गति से तथा पक्ष और मास चन्द्रमा की गति से सुनिश्चित होते हैं।।१२-१५।।**

ऊर्ध्वलोक/वैमानिक देव

अधोलोक और मध्यलोक की एवं भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों की चर्चा होने के उपरान्त अब **ऊर्ध्वलोक और वैमानिक देवों की चर्चा आरंभ करते हैं।**

वैमानिक देवों के स्वरूप को बतानेवाले कुछ सूत्र इसप्रकार हैं –

वैमानिकाः।।१६।।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च।।१७।।

उपर्युपरि।।१८।।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च।।१९।।

यद्यपि रहने के स्थान को तो घर ही कहते हैं; तथापि लोक में भगवान के रहने के स्थान को मंदिर, राजा के रहने के स्थान को महल, सेठ के रहने के स्थान को कोठी, साहब के रहने के स्थान को बंगला और गरीबों के रहने के स्थान को झोपड़ी कहा जाता है; उसीप्रकार पुण्यशाली प्रभावक देवों के रहने के स्थान को विमान कहते हैं।

उक्त विमानों में रहनेवाले देवों को वैमानिक देव कहते हैं।

यहाँ से वैमानिक देवों का वर्णन आरंभ होता है। सोलहवाँ सूत्र मात्र इतनी बात ही बताता है।

वे वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं –

१. कल्पोपन्न और २. कल्पातीत।

जहाँ इन्द्र सामानिक आदि की कल्पना होती है; उन सोलह स्वर्गों को कल्प कहते हैं और जहाँ इसप्रकार की कल्पना या भेद नहीं है, सभी एक समान ही हैं, सभी अहमिन्द्र ही हैं; उन नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों को कल्पातीत कहते हैं।

ये सोलह स्वर्ग और नव ग्रैवेयक आदि सभी ऊपर-ऊपर हैं।

सौधर्म-ऐशान, सनत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार – इन छह युगलों के बारह स्वर्गों में; आनत-प्राणत – इन दो स्वर्गों में; आरण-अच्युत – इन दो स्वर्गों में; नव ग्रैवेयक विमानों में; नव अनुदिश विमानों में और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि – इन पाँच अनुत्तर विमानों में वैमानिक देव रहते हैं।

प्रश्न – इन्द्रादि के भेद तो भवनवासी आदि में भी हैं; अत: उन्हें कल्पोपन्न क्यों नहीं कहते ?

उत्तर – यद्यपि यह सत्य है कि भवनवासी आदि में इन्द्रादिक भेद होते हैं; तथापि **रूढि से सोलह स्वर्गवाले वैमानिक देवों को ही कल्पवासी कहते हैं।**

जिसप्रकार अधोलोक में सब एक-दूसरे के नीचे-नीचे हैं। जैसे रत्नप्रभा पृथिवी के नीचे शर्कराप्रभा, शर्कराप्रभा के नीचे बालुकाप्रभा आदि हैं, इसलिए वहाँ सूत्र में **अधोध:** का प्रयोग किया गया है।

उसीप्रकार स्वर्गों में सब ऊपर-ऊपर हैं।

मध्यलोक में सब तिरछे बसे हुए हैं और एक द्वीप को एक समुद्र घेरे हुए है और एक समुद्र को एक द्वीप घेरे हुए है। तीन लोक और ढाईद्वीप के नक्शे को देखकर यह बात आसानी से समझी जा सकती है।

जिसप्रकार नरकों में बिल तीन प्रकार के होते हैं – इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक। उसीप्रकार स्वर्गों में **विमान भी तीन प्रकार के होते हैं; उनके नाम भी इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक है।**

जो विमान इन्द्रक बिल की तरह अन्य विमानों के बीच में रहता है, उसे **इन्द्रक** विमान कहते हैं। उसकी चारों दिशाओं में कतारबद्ध जो विमान होते हैं, वे **श्रेणीबद्ध** कहे जाते हैं और विदिशाओं में जहा-तहाँ बिखरे फूलों की तरह जो विमान होते हैं, उन्हें **पुष्पप्रकीर्णक** विमान कहते हैं।

सर्वप्रथम **सौधर्म और ऐशान कल्प (स्वर्ग)** हैं। इनके ऊपर **सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प** हैं। इनके ऊपर **ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्प** हैं। इनके ऊपर

लान्तव और कापिष्ठ कल्प हैं। इनके ऊपर **शुक्र और महाशुक्र कल्प** हैं। इनके ऊपर **शतार और सहस्रार कल्प** हैं। इनके ऊपर **आनत और प्राणत कल्प** हैं। इनके ऊपर **आरण और अच्युत कल्प** हैं।

ध्यान रहे, कल्प (स्वर्ग) सोलह हैं और इन्द्र बारह। उनकी व्यवस्था इसप्रकार है–

सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र – इन चार कल्पों के **चार** इन्द्र हैं।

ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर इन दो कल्पों का **एक ब्रह्म** नामक इन्द्र है। लान्तव और कापिष्ठ इन दो कल्पों में एक **लान्तव** नाम का इन्द्र है। शुक्र और महाशुक्र में एक **शुक्र** नाम का इन्द्र है। शतार और सहस्रार इन दो कल्पों में एक **शतार** नाम का इन्द्र है।

तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत – इन चार कल्पों के **चार** इन्द्र हैं।

इसप्रकार कल्पवासियों के बारह इन्द्र होते हैं।

सुमेरु पर्वत एक हजार योजन पृथ्वी के भीतर गहरा है और पृथ्वी के ऊपर निन्यानबे हजार योजन ऊँचा है। उसके नीचे अधोलोक है। मेरु पर्वत की जितनी ऊँचाई है, उतना मोटा और तिरछा फैला हुआ तिर्यग्लोक है। उसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है, **सुमेरु पर्वत से एक बाल के अन्तर से ऋजुविमान है, जो सौधर्म कल्प का इन्द्रक विमान है।**

यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि जो कल्पों (स्वर्गों) के नाम हैं, वही नाम इन्द्रों के भी हैं। जहाँ दो कल्पों में एक इन्द्र है; वहाँ उनमें जो प्रथम स्वर्ग का नाम है, वही इन्द्र का नाम है।

कल्पातीत नव ग्रैवेयक के विमान एक के ऊपर एक नौ हैं जो कि तीन-तीन पटलरूप से हैं अर्थात् सबसे पहले, **अधो ग्रैवेयक के तीन** पटल, उसके ऊपर मध्य ग्रैवेयक के तीन पटल, उसके ऊपर ऊर्ध्व ग्रैवेयक के तीन पटल हैं।

इसके ऊपर अनुदिशों के नौ विमान हैं, जो कि एक ही पटल में है और अनुत्तर विमानों में सबसे बीच में सर्वार्थसिद्धि नामक विमान है और उसकी चारों दिशाओं में शेष चार अनुत्तर विमान (विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित) हैं।

एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि भवनवासियों के **४०**, व्यन्तरों के **३२**, कल्पवासियों के **२४** एवं ज्योतिषियों के चन्द्रमा और सूर्य – ऐसे दो – इसप्रकार

यह सब मिलाकर ९८ इन्द्र होते हैं।

मनुष्यों का इन्द्र, चक्रवर्ती और पशुओं का इन्द्र, जंगल का राजा शेर – इसप्रकार मिलकर सौ इन्द्र हो जाते हैं।

संबंधित गाथा इसप्रकार है –

भवणालय चालीसा, विंतरदेवाण होंति बत्तीसा।
कप्पामरचउवीसा, चंदो सूरो णरो तिरियो।। [1]

भवनवासियों के ४०, व्यन्तरदेवों के ३२, कल्पवासियों के २४, ज्योतिषियों के चन्द्रमा और सूर्य – इसप्रकार दो, मनुष्यों का चक्रवर्ती और तिर्यंचों का शेर – इसप्रकार ये सौ इन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान की वन्दना करते हैं।।१६-१९।।

वैमानिक देवों में हीनाधिकता

वैमानिक देवों में नीचे की अपेक्षा ऊपर के देवों में क्रमशः कुछ **चीजों में अधिकता और कुछ चीजों में हीनता होती है।** अब यह दिखाते हैं; जो इसप्रकार है –

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः।।२०।।

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः।।२१।।

वैमानिक देवों में स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याविशुद्धि, इन्द्रियविषय और अवधिविषय की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव अधिक हैं।

गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव हीन हैं।

वैमानिक देवों में नीचे के देवों से ऊपर के देवों की **आयु अधिक** होती है, **प्रभाव अधिक** होता है, लौकिक सुख की **अनुकूलता भी अधिक** होती है, शरीरादिक की **कान्ति भी उत्कृष्ट** होती है, कषायें मन्द होने से **लेश्याओं की विशुद्धि भी अधिक** होती है तथा पाँच इन्द्रियों और अवधिज्ञान से **जानने का विषय भी अधिक** होता जाता है।

आवागमन, शरीर की ऊँचाई, भोगसामग्रीरूप परिग्रह और अभिमान नीचे से ऊपर के देवों में क्रमशः कम होता जाता है।

यद्यपि ऊपर के देवों में नीचे के देवों की अपेक्षा आवागमन की शक्ति

१. वृहद्द्रव्यसंग्रह की पहली गाथा की ब्रह्मदेवकृत संस्कृतवृत्ति में उद्धृत

अधिक होती है; तथापि विषयाभिलाषा कम होने से उनका आवागमन कम होता है।

शरीर की ऊँचाई भी क्रमश: कम होती जाती है, जो इसप्रकार है –

सौधर्म-ऐशान के देवों का शरीर **सात अरत्नि** (हाथ) ऊँचा है। सानत्कुमार, माहेन्द्र में **छह अरत्नि** (हाथ) ऊँचा है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ में **पाँच अरत्नि** ऊँचा है।

शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार में **चार अरत्नि** ऊँचा है। आनत, प्राणत में **साढे तीन अरत्नि** और आरण, अच्युत में **तीन अरत्नि** ऊँचा है।

अधो ग्रैवेयकों में **अढाई अरत्नि**, मध्य ग्रैवेयक में **दो अरत्नि** और उपरिम ग्रैवेयकों में तथा **नौ अनुदिशों में डेढ अरत्नि** ऊँचा है और पाँच अनुत्तरों में **एक अरत्नि ऊँचा शरीर** है।

तथा नीचे से ऊपर के देवों की भोगसामग्री भी कम ही होती है; क्योंकि विषयाभिलाषा भी ऊपर-ऊपर कम होती जाती है। विमान आदि परिग्रह भी ऊपर-ऊपर कम है।

नीचे की अपेक्षा ऊपर के देवों में कषाय की मंदता होने से अभिमान भी कम है; क्योंकि **जिनकी कषाय मंद होती है, वे ही जीव ऊपर-ऊपर के कल्पों में जन्म लेते हैं।।२०-२१।।**

वैमानिक देवों में लेश्यायें

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में होनेवाली लेश्याओं का वर्णन दूसरे सूत्र में किया जा चुका है।

अब **आगामी सूत्र में वैमानिक देवों में होनेवाली लेश्याओं का वर्णन करते हैं –**

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ।।२२।।

दो, तीन कल्प युगलों में तथा शेष वैमानिकों में क्रमश: पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यायें होती हैं।

तात्पर्य यह है कि सौधर्म-ऐशान तथा सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्प (स्वर्ग) में **पीत लेश्या;** ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ और शुक्र-महाशुक्र कल्प में **पद्म लेश्या** तथा इसके ऊपर के कल्पों अर्थात् शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पों में तथा कल्पातीत विमानों अर्थात् नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में **शुक्ललेश्या** होती है।

यह कथन सूत्र के अनुसार सामान्य कथन है; सर्वार्थसिद्धि आदि टीकाओं में किये कथन के अनुसार यदि विशेष कथन की अपेक्षा देखें तो वह इसप्रकार है –

सौधर्म और ऐशान कल्प में **पीत** लेश्या है। सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में **पीत और पद्म** लेश्याएँ हैं।

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ कल्पों में **पद्म** लेश्या है।

शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्पों में **पद्म और शुक्ल** ये दो लेश्याएँ हैं।[१]

इसके ऊपर आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में और नव ग्रैवेयक में शुक्ल लेश्या है तथा नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में **परमशुक्ल लेश्या** है।।२२।।

(क्रमश:)

१. सर्वार्थसिद्धि, पृष्ठ १९१

आगामी कार्यक्रम...

अटलांटा (अमेरिका) में जैन अध्यात्म एकेडमी ऑफ नॉर्थ अमेरिका **(JAANA)** के तत्त्वावधान में दिनांक 28 जून से 2 जुलाई 2015 तक 15वाँ वार्षिक शिविर आयोजित किया जा रहा है।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर आदि विद्वानों द्वारा प्रतिदिन 8 घंटे स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होगा।

अत: जिन भारतवासी बन्धुओं के परिचित अमेरिका में रहते हों, वे उन्हें अभी से सूचित करें, जिससे अधिक से अधिक लोग वीतरागी तत्त्वज्ञान का लाभ ले सकें। जाना **(JAANA)** द्वारा आयोजित यह शिविर जैना **(JAINA)** कन्वेन्शन से पूर्व आयोजित होगा।

संपर्क सूत्र – श्री अतुलभाई खारा, डलास
Mob.: 001-469-831-2163, Red. : 001-972-867-6535,
Off.: 001-972-424-1029; E-mail : insty@verizon.net

छहढाला प्रवचन

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न आराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दूहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

ज्ञानस्वरूप आत्मा में केवलज्ञान भरा है, राग के मेल-मिलाप बिना अकेला शुद्ध ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानने पर आनन्द रस से भरपूर सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा सम्यग्ज्ञान सदा होता है। भगवान आत्मा के श्रद्धा गुण की सम्यग्दर्शन पर्याय – ज्ञान, आनन्द और शान्ति के अपूर्व वेदन सहित प्रकट होती है। जीवादि सात तत्त्व और उनमें पर से भिन्न अपने शुद्ध आत्मा को सम्यग्दृष्टि जानता है और उसकी श्रद्धा करता है। सामान्य और विशेष दोनों की विपरीतता रहित प्रतीति सम्यग्दर्शन है। अकेले सामान्य को माने, विशेष को न माने अथवा अकेला विशेष माने, सामान्य को न माने तो तत्त्व श्रद्धा सच्ची नहीं होती। वस्तु स्वयं सामान्य-विशेष स्वरूप है, उसको विपरीतता रहित जैसी है, वैसी जानकर श्रद्धा करनी चाहिए। धर्मी को श्रद्धा-ज्ञान में विपरीतता नहीं तथा संशयादि दोष भी नहीं। हमारे आत्मा को हमने जाना या नहीं, हमें सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं, हमारा अनुभव सच्चा है या नहीं – ऐसा संशय धर्मात्मा को नहीं होता। जहाँ संशय हो, वहाँ तो अज्ञान है। धर्मी तो अपनी दशा को निशंक जानता है कि अपूर्व आनन्द के वेदन सहित हमको सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा की अनुभूति हुई है, सर्वज्ञ देव ने जैसा आत्मा जाना है, वैसा ही अपने आत्मा को हमने

अनुभव सहित जाना है, उसमें अब कोई शंका नहीं है। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान में मोक्षमार्ग की आराधना होती है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान बिना कोई जीव भले द्रव्यलिंगी साधु हो, परन्तु उसको संशयादि दोष बने रहते हैं। जहाँ सम्यग्ज्ञान है, वहाँ आत्मा का संशय नहीं रहता और जहाँ आत्मा का संशय है, वहाँ सम्यग्ज्ञान नहीं होता है।

"जहाँ शंका तहाँ गिन सन्ताप, ज्ञान तहाँ शंका नहीं स्थाप....।"

ज्ञानी जीव आत्मस्वरूप में नि:शंकित होते हैं, इसलिए मरणादि के भय रहित निर्भय होते हैं।

सम्यग्दर्शन होने में आत्मा कारण है। जिस सम्यग्दर्शन में परिपूर्ण आत्मा ही प्रतीति में आ गया तो उसके साथ के ज्ञान में संशय कैसे रह सकता है ? मेरा चैतन्यस्वरूप आत्मा मोह और राग से रहित है अर्थात् भव के कारण से रहित है। ऐसे आत्मा का जिस श्रद्धा ने अनुभव सहित स्वीकार किया, उस श्रद्धा के साथ का ज्ञान भी नि:शंक हो गया कि मेरे आत्मा में भव नहीं, भव का कारण मेरे स्वभाव में नहीं। भव के कारणरूप ऐसे विभाव से भिन्न हमारा मुक्त स्वभाव हमने अनुभव किया, अब भव कैसा ? अब अनन्त भव शेष होंगे – ऐसी शंका धर्मी को होती ही नहीं, उसके तो अल्पकाल में मोक्ष होने की पात्रता आत्मा में से आ गई है, मोक्ष की तरफ का परिणाम चल ही रहा है। ऐसी दशा का नाम सम्यग्ज्ञान है और वह मोक्ष का साधन है।

सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों में राग नहीं है, उसमें स्व-पर का यथार्थ निर्णय होता है। ज्ञान और आनन्द स्व हैं, शरीर और रागादि पर हैं।

मैं ज्ञानमय तत्त्व हूँ। ज्ञान के साथ साथ उस भूमिका के योग्य राग है, कर्म है, शरीर है। बस! इतना स्वीकार है, परन्तु ज्ञान से तो वह भिन्न ही है तथा ज्ञानी के अनन्त भव हों ऐसा राग नहीं है, अनन्त भव हों ऐसा कर्म नहीं है; अल्प राग और अल्प कर्म है, वह भी मैं नहीं हूँ – उसका अस्तित्व मेरे ज्ञान में नहीं है, मेरा अस्तित्व राग और कर्म रहित शुद्ध चैतन्यमय है। इसप्रकार धर्मी जीव स्व-पर के भिन्न अस्तित्व को जानता है।

सम्यग्दर्शन में आत्मा के भूतार्थ स्वभाव की प्रतीति है, उसके साथ का

सम्यग्ज्ञान स्व-पर, द्रव्य-पर्याय, शुद्धता-विकार सबको भेद सहित जानता है। वस्तु का सच्चा स्वरूप जाने बिना श्रद्धा किसकी ? ज्ञान बिना श्रद्धा सच्ची नहीं और श्रद्धा बिना ज्ञान सच्चा नहीं। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनों साथ ही हैं।

मैं अखण्ड शुद्ध चैतन्य हूँ। मेरी पर्याय में अमुक निर्मलता हुई है और अल्प मलिनता है तथा कर्म का संबंध भी अल्प है। जिससे अनन्त भव हों ऐसा कोई भी मिथ्यात्वादि मलिन भाव या कर्म का संबंध मेरी पर्याय में नहीं है। अस्थिरता का जो अत्यन्त अल्प राग है, उसकी स्वभाव दृष्टि में कोई गिनती नहीं है। स्वभाव में या उसमें एकाग्र हुई पर्याय में तो भव है नहीं, विकार भी नहीं, पराश्रय में जो अल्प रागादि अथवा एकाध भव हों, वह भी ज्ञान से तो भिन्न है। ज्ञान स्व है और जो अल्प रागादि हैं, वे ज्ञान से भिन्न पर हैं। अनन्त संसार का कारण हो ऐसा तो कोई रागादि भाव धर्मी के होता ही नहीं। ज्ञान से भिन्न पड़े रागादि में ऐसी शक्ति नहीं कि जीव को बहुत भव करावें। इसका नाम अनन्तानुबंधी का अभाव है। धर्मी को महान चैतन्य तत्त्व के सामने रागादि तो अत्यन्त हीन हो गये हैं। अब जो अल्प राग शेष है, उसे भी धर्मी जीव बन्ध का ही कारण समझता है, मोक्ष का कारण कदापि नहीं। अब, सम्यग्ज्ञान के साथ बन्ध का कारण तो इतना अल्प रहा है कि कदाचित् एकाध भव होगा। भविष्य में प्रबल कर्म आ जावे और भव में भटकावे - ऐसा सन्देह भी धर्मी को नहीं होता। ज्ञान में से तो ज्ञान ही होता है; संसार नहीं। मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञान में संसार है ही कहाँ ? ज्ञान के बल से यह अल्प रागादि भी एकाध भव में छूट जावेंगे और मोक्ष दशा प्रकट हो जावेगी। जिसको इसमें सन्देह है, उसको अपने सम्यग्ज्ञान की ही श्रद्धा नहीं अर्थात् उसे सम्यग्ज्ञान हुआ ही नहीं।

अहा ! सम्यग्ज्ञान किसे कहें ? उसकी अचिन्त्य महिमा की लोगों को खबर नहीं है। जैसे सम्यक् श्रद्धा में शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य का स्वीकार नहीं, वैसे ही उसके साथ जो सम्यग्ज्ञान है, वह भी ऐसी शक्तिवाला है कि अपने स्वभाव में से परभाव को भिन्न कर डालता है अर्थात् सम्यग्ज्ञान के साथ ऐसा राग नहीं रहता, जो अनन्त भव करावे। वैसे ही अजीव में भी निमित्तरूप से ऐसा कोई कर्म का संबंध वहाँ नहीं रहता, जो अनन्त भव का कारण हो सके। इसप्रकार सब तत्त्वों का मेल

होता है। यहाँ उपादान में तो अनन्त भव नहीं और निमित्त में भी ऐसा कर्म या विकार नहीं। जो अल्प कर्म अथवा विकार है, उसका भी सम्यग्ज्ञान में तो अभाव ही है। विकार के किसी अंश को ज्ञान अपने साथ एकपने नहीं स्वीकारता, सम्यग्ज्ञान की धारा तो राग से अत्यन्त जुदी जाति की वर्तती है। आत्मा में ऐसी अपूर्व ज्ञान दशा होने पर वह स्पष्ट अपने वेदन में आती है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ भव के अभावरूप भाव प्रगट हुआ, मोक्ष की तरफ की धारा प्रकटी है, फिर वहाँ अब अनन्तभव की शंका कैसे रहे ? वहाँ अब जो राग रहा वह इतना अल्प है कि अल्पकाल में ही उसका अभाव हो जायेगा। उस राग को ज्ञान से तो भिन्न जाना ही है, तो फिर उसका बल कहाँ से रहेगा ? ज्ञान का ही बल है और उस ज्ञान सामर्थ्य के बल से राग का नाश ही हो जाता है। ज्ञान तो विकार रहित ही है, वह ज्ञान विकार का नाशक है, रक्षक नहीं। अरे ऐसा ज्ञान जागृत होने पर अन्दर में जो शान्ति वेदन में आती है उसकी क्या बात? आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान कोई सामान्य वस्तु नहीं है, वह तो कोई अलौकिक भाव है, वह एक क्षण में ही अनन्त संसार दु:खों को काटकर अपूर्व मोक्षसुख का स्वाद चखाती है, संसार चक्र को बंद करके मोक्ष चक्र चालू करती है। इसलिए हे भव्य जीव ! तुम सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना करो।

(क्रमश:)

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

15 फरवरी	हस्तिनापुर	शिलान्यास समारोह
20 से 22 फरवरी	जयपुर (राज.)	पंचकल्याणक वार्षिकोत्सव
1 से 6 अप्रैल	विदिशा (म.प्र.)	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
12 अप्रैल	दिल्ली	उपकार दिवस एवं दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल दिल्ली का स्वर्ण जयंती समारोह
17 से 23 मई	पारले (मुम्बई)	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
24 मई से 10 जून	मेरठ (उ.प्र.)	प्रशिक्षण-शिविर

नियमसार प्रवचन –

परिग्रहत्यागव्रत का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 60वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचमवदमिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स।।६०।।

(हरिगीत)

निरपेक्ष भावों पूर्वक सब परिग्रहों का त्याग ही।
चारित्रधारी मुनिवरों का पाँचवाँ व्रत कहा है।।६०।।

पर की अपेक्षा से रहित शुद्धनिरपेक्ष भावनापूर्वक सभी प्रकार के परिग्रहों के त्याग सम्बन्धी शुभभाव के साथ भूमिका के योग्य चारित्र का भार वहन करने वाले मुनिवरों को पाँचवाँ परिग्रहत्याग व्रत होता है।

(गतांक से आगे....)

शुद्धोपयोग को यहाँ सातवें गुणस्थान में माना है इसलिए शुद्धोपयोग दशा में वर्त्तते मुनि के वस्त्र-पात्रादि नहीं होते, वस्त्रादि रखे और मुनिपना माने तो वह निगोदगामी है – ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा है, क्योंकि वस्त्रादिधारण करते हुए मुनिपना माननेवाला वीतरागता की विराधना करता है।

शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है और छठे गुणस्थान में होने वाले शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का हेतु कहा गया है। परमार्थ से तो त्रिकालीकारणपरमात्मा के अवलम्बन से ही मोक्षदशा प्रकट होती है। छठे गुणस्थान में स्वभाव के अवलम्बन से वीतराग परिणति तो वर्त्तती है, परन्तु वहाँ साथ में जो शुभोपयोग वर्त्त रहा है, उसे परम्परा से मोक्ष का कारण कहा गया है। वास्तव में तो छठे गुणस्थान में जो शुद्धपरिणति प्रकट हुई है वही विशेष शुद्धि का कारण होती है, इसलिए वही मोक्ष का हेतु होती है; राग शुद्धता का कारण नहीं होता। हाँ, छठे गुणस्थान में शुद्धपरिणति के साथ जो राग वर्त

रहा है, उसे भी आरोप से मोक्ष का परम्पराकारण कहा जाता है।

वास्तव में शुद्धनिश्चय से तो अखण्ड कारणपरमात्मा ही शुद्धोपयोग का कारण है और पर्याय में कारण कहना हो तो छठे गुणस्थान में स्वभाव के आश्रय से होने वाली शुद्धता मोक्ष का कारण है और उसके साथ का शुभराग निमित्तकारण है। निमित्तकारण अर्थात् व्यवहारकारण। शुभोपयोगी मुनि को भी वास्तव में तो शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन करने वाली परिणति ही विशेष शुद्धता का कारण है; परन्तु यह व्यवहारचारित्र का अधिकार चल रहा है, इसलिए उस मुनि के शुभोपयोग को भी शुद्धोपयोग का निमित्त मानकर उपचार से परम्परा मोक्ष का कारण कहा। शुद्धनिश्चय-दृष्टि से देखा जाय तो कारणपरमात्मा ही मोक्ष का शुद्ध उपादान है और वीतरागीदशा निमित्तकारण है। पर्याय अपेक्षा से देखें तो वीतरागी परिणति मोक्ष का निश्चयकारण है और तब शुभोपयोग निमित्तकारण है। छठे गुणस्थान में शुभोपयोग है; किन्तु स्वभाव के अवलम्बन से वह शुभोपयोग टूटकर शुद्धोपयोग होनेवाला है, इसलिए छठे गुणस्थान के शुभोपयोग को सातवें गुणस्थान के शुद्धोपयोग का निमित्त कहा है।

निमित्त में से, पुण्य में से अथवा पर्याय में से पर्याय नहीं आती। त्रिकाली ध्रुवकारणपरमात्मा में से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि पर्यायें प्रकट होती हैं, इसलिए निश्चय से वह कारणपरमात्मा ही सब का कारण है और उसी के आश्रय से ही शुद्धोपयोग प्रकट होता है। जब उस शुद्धोपयोग को मोक्ष का कारण कहा, तब शुभ को व्यवहार कारण कहा जाता है; परन्तु वह व्यवहार कब हुआ ? – उसीसमय साथ में ध्रुवकारणपरमात्मा का आश्रय उपस्थित है और उसी के आश्रय से निश्चयकारण प्रकट हुआ है और तभी शुभराग को व्यवहारकारण कहा जाता है। व्यवहारव्रत वास्तव में मोक्ष का कारण नहीं है, किन्तु उसके साथ की शुद्धपरिणति का उसमें आरोप करके ही उसको मोक्ष का परम्पराकारण कहा है। जिसने द्रव्य का आश्रय लिया है, उसको वह परम्पराकारण है। जिसने द्रव्य का आश्रय लिया ही नहीं, राग से और निमित्त के आश्रय से कल्याण मानता है, उसके तो शुभराग में व्यवहारकारण का आरोप भी नहीं आ सकता। शुद्धपरिणति बिना आरोप करके व्यवहार कारण कहा जाता है, परन्तु निश्चयकारण प्रकट हुए बिना शुभ में आरोप किसका किया जाये ? निश्चयकारण हो वहाँ शुभ में आरोप करके व्यवहारकारण कहा जाता है, परन्तु निश्चयकारण प्रकट हुए

बिना शुभ में किसका आरोप करना ? शुद्धकारणपरमात्मा के आश्रय से जो निश्चयकारणरूप शुद्धपरिणति प्रकट हुई, तभी साथ के शुभ में उसका आरोप करके उसे व्यवहारकारण कहा जाता है। वीतरागी परिणति ही मोक्ष का साक्षात् कारण है और उस वीतरागी परिणति का मूलकारण तो त्रिकालीद्रव्य कारणशुद्धपरमात्मा है।

त्रिकालीकारणशुद्धपरमात्मा वीतरागी परिणति का कारण है और वह वीतरागी परिणति मोक्ष का कारण है; अर्थात् शुद्ध परिणति का, शुद्धोपयोग का अथवा मोक्ष का साक्षात् मूलकारण तो कारण-परमात्मा ही है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी कारण तो व्यवहार और निमित्त हैं।

अपरिग्रहव्रत के वर्णन में निरपेक्ष भावना की बात रखी है अर्थात् जिसको वस्त्रादि परिग्रह की अपेक्षा हो, उसको निरपेक्षभावना नहीं होती और अपरिग्रहव्रत नहीं होता।

शुद्धपरिणति और शुद्धोपयोग में इतना भेद है कि छठे गुणस्थान में शुद्धपरिणति होने पर भी शुद्धोपयोग नहीं होता, शुद्धोपयोग हो वहाँ तो शुद्धपरिणति होती ही है। छठे में शुद्धोपयोग नहीं होता फिर भी शुद्धपरिणति तो होती है, यदि वह भी न हो तो छठा गुणस्थान टिक ही नहीं सकता। छठे गुणस्थान में स्वभाव के अवलम्बन से जितना अकषायभाव है, उतनी तो शुद्धपरिणति है और जितना राग है, उतनी अशुद्धता है, वहाँ अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प उठते हैं, उनका वह व्यवहार से कर्त्ता है, निश्चय से तो उस विकल्प का भी कर्त्ता नहीं है और बाहर की आहारादि वस्तुओं का तो व्यवहार से भी कर्त्ता नहीं है; क्योंकि वह तो परद्रव्य है; परद्रव्य की क्रिया का कर्त्ता माननेवाला तो ईश्वर को जगतकर्त्ता माननेवाले के समान मिथ्यात्वी है, उसके तो शुद्धपरिणति होती ही नहीं अर्थात् उसके शुभराग को व्यवहार से भी व्रत नहीं कह सकते।

जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन। आत्मा पर को ग्रहण करे या त्यागे, यह बात वस्तु स्वभाव में है ही नहीं। मुनि को अन्तरस्वभाव में एकाग्रता होने पर समस्त परद्रव्यों के प्रति निरपेक्षभावना हो गई है, उस निरपेक्षभावना सहित जो परिग्रहत्याग का विकल्प व्यवहार से महाव्रत है। अन्तरंग में निरपेक्षभावना बिना अकेले बाहर के त्याग में कोई व्यवहारव्रत मान ले तो उसको व्यवहारव्रत भी नहीं है।

छठे गुणस्थान की एक पर्याय में दो भाग हैं। जितनी चैतन्य के आश्रय से

वीतरागता है, उतना शुद्धभाव है और बीच में जो शुभराग है, उतना अशुद्धभाव है। यदि शुद्धता न हो तो मुनिदशा नहीं हो सकती और यदि अशुद्धतारूप रागांश न हो तो परिपूर्ण वीतरागता हो जाय। मुनि को छठे गुणस्थान में एकपर्याय में दो प्रकार एक साथ वर्त्तते हैं। शुद्धता मोक्ष का कारण है और अशुद्धता बंधभाव है-शुद्धता के साथ होनेवाले शुभविकल्प को ही व्यवहार से व्रत कहते हैं।

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ॥

(हरिगीत)

यदि परिग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे।
पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नहीं॥

यदि परद्रव्य-परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवतत्त्व को प्राप्त होऊँ। मैं तो ज्ञाता ही हूँ इसलिये (परद्रव्यरूप) परिग्रह मेरा नहीं है।

निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनि ऐसी भावना करते हैं कि कोई भी परद्रव्य मेरा परिग्रह नहीं है। यदि परद्रव्य मेरा परिग्रह हो अर्थात् शरीरादि परद्रव्य की क्रिया मेरे द्वारा होती हो तब तो मैं जड़ हो जाऊँ, क्योंकि जड़ का स्वामी जड़ होता है। मैं बोलूँ या मौन रहूँ – ऐसा जो मानता है, वह जड़ वाणी के परिग्रह को अपना मानता है, अतः वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

धर्मी तो जानता है कि मैं तो ज्ञातादृष्टा ही हूँ, परद्रव्य की क्रिया मेरे हाथ की नहीं है और ऐसे भानपूर्वक यहाँ तो मुनि के महाव्रत की बात है। जिसको ऐसा भान नहीं है, उसको तो महाव्रत होता ही नहीं। शरीर चले वहाँ ऐसी बुद्धि हो कि यह मैं चलता हूँ, भाषा बोली जाय वहाँ ऐसा माने कि यह मैं बोलता हूँ – तो वह मिथ्यादृष्टि है, वह जड़परिग्रह का स्वामी होता है। धर्मी तो मानता है कि यदि परद्रव्य का परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीव बन जाऊँ, मैं तो ज्ञातादृष्टा ही हूँ इसलिए कोई भी परद्रव्य का परिग्रह मेरा नहीं है।

(हरिणी)

त्यजतु भवभीरुत्वाद्भव्यः परिग्रहविग्रहं
निरुपमसुखावासप्राप्त्यै करोतु निजात्मनि।

स्थितिमविचलां शर्माकारां जगज्जनदुर्लभां
न च भवति महच्चित्रं चित्रं सतामसताभिदम् ।।८० ।।

(हरिगीत)

हे भव्यजन ! भवभीरुता बल परिग्रह को छोड़ दो।
परमार्थ सुख के लिए निज में अचलता धारण करो ।।
जो जगतजन को महादुर्लभ किन्तु सज्जन जनों को।
आश्चर्यकारी है नहीं आश्चर्य दुर्जन जनों को ।८०।।

भव्य जीव भवभीरुता के कारण परिग्रह विस्तार को छोड़ो और निरुपम सुख के आवास की प्राप्ति हेतु निज आत्मा में अविचल, सुखाकार (सुखमयी) तथा जगतजनों को दुर्लभ ऐसी स्थिति (स्थिरता) करो। यह (निजात्मा में अचल सुखात्मक स्थिति करने का कार्य) सत्पुरुषों को कोई महा आश्चर्य की बात नहीं है, असत्पुरुषों को आश्चर्य की बात है।

जिसे चैतन्य में स्थिर होने की भावना हो और भवभीरुपना हो, वह परिग्रह के विस्तार को छोड़ दे। यहाँ मुख्यतया मुनि की बात है। मुनि चैतन्य में स्थिर होने के कामी हैं और भवभीरु हैं। छठे गुणस्थान में अल्पराग है, परन्तु मुनि को परिग्रह की ममता नहीं होती और बाहर में भी परिग्रह नहीं होता। अत: यहाँ कहते हैं कि अहो मुनि ! छठे गुणस्थान में राग का विकल्प है, उसे भी छोड़कर अप्रमत्त होओ..... अप्रमत्त होओ ! चैतन्य की लीनता में ठहरो ! निजात्मा में अविचल स्थिरता ही निरुपम सुख की प्राप्ति का उपाय है। इसलिये हे मुनियों ! निरुपम सुख का आवास – ऐसे आत्मा की प्राप्ति के लिए शुद्ध आत्मा में अविचलपने सुखाकार स्थिति करो। ऐसी निजात्मा में स्थिति मुनिवरों को सहज है – वह कहीं सत्पुरुषों को आश्चर्यजनक नहीं है। असत्पुरुषों को अर्थात् जिन्हें आत्मा का भान नहीं है – ऐसे जीवों को वह आश्चर्य की बात है। यहाँ मुनि को छठे गुणस्थान में विकल्प है, उसे छोड़कर सातवें गुणस्थान की स्थिरता करने को कहते हैं।

इसप्रकार पाँच महाव्रतों का वर्णन किया। **(क्रमश:)**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : पर्याय द्रव्य से भिन्न है या अभिन्न ? और किसप्रकार ?

उत्तर : द्रव्य पर्याय से भिन्न है; क्योंकि ध्रुव में तो पर्याय नहीं और पर्याय में ध्रुव आता नहीं अर्थात् ध्रुव पर्याय को स्पर्श करता नहीं, परन्तु पर से भिन्न करने के लिये – ऐसा कहते हैं कि द्रव्य की पर्याय है; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सामान्य द्रव्य और विशेष पर्याय – ये दो धर्म एकरूप हो जाते हैं। यह दोनों धर्म अर्थात् सामान्यधर्म और विशेषधर्म एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते।

प्रश्न : समयसार गाथा-11 में पर्याय को अभूतार्थ कहा है, क्या वह सर्वथा है ही नहीं ? तथा गाथा 15 में पर्याय को मुख्य कहकर उसे जैनशासन कहा। कृपया इसका रहस्य समझाइये।

उत्तर : समयसार गाथा – 11 में पर्याय को गौण करके अभूतार्थ कहा है, वहाँ तो पर्याय का आश्रय छुड़ाने के लिये पर्याय को गौण करके अभूतार्थ-असत्यार्थ कहा है, किन्तु पर्याय सर्वथा है ही नहीं – ऐसा मत समझना। गौण करने में पर्याय के अस्तित्व का अस्वीकार नहीं है। तथा गाथा-15 में तो जिसमें अबद्धस्वरूप आत्मा अनुभव में आया, वह पर्याय मुख्य ही है – वह पर्याय जैनशासन है। अहाहा ! मेरा जो द्रव्य विकार रहित वीतरागी तत्त्व है, उसका लक्ष्य करने पर पर्याय में वीतरागता आती है। यह वेदन की पर्याय मुख्य ही है। द्रव्य तो वेदन में आता नहीं, पर्याय ही वेदन में आती है और वह वेदन की पर्याय मुझे मुख्य है; उसे गौण कर देंगे तो नहीं चलेगा। नाथ ! पूर्णानन्द का नाथ ! जहाँ जाना और अनुभव में आया, वह गौण नहीं हो सकता।

भाई ! वह तो तुझे द्रव्य का लक्ष्य-आश्रय कराने के लिये पर्याय को गौण किया था, परन्तु वेदन तो पर्याय में मुख्य है। भले ही द्रव्य का आश्रय कराने के लिये पर्याय को गौण किया था; किन्तु क्या वह परिणाम कहीं चला जायेगा ? नहीं, नहीं। जो परिणाम अस्तिरूप वेदन में आवे, वह कहाँ जावेगा ? अहा ! यह आत्मा तो पुकार

करता है कि वीतरागस्वरूप जो मेरा द्रव्य है, उसका लक्ष्य करने पर मुझे वीतरागता वेदन में आती है और यह वेदन मुझे मुख्य है।

प्रश्न : वस्तु के द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है तो पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आती है ?

उत्तर : वस्तु 'द्रव्य' और 'पर्याय' ऐसे दो स्वभाववाली है। उनमें से द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है, किन्तु पर्याय का स्वभाव 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' ऐसे दो प्रकार का है – अर्थात् पर्याय की अशुद्धता द्रव्यस्वभाव में से आई हुई नहीं है; वह तो तत्समय की पर्याय का ही भाव है, द्वितीय समय में उस पर्याय का व्यय होने पर वह अशुद्धता भी मिट जाती है।

पर्याय की शुद्धता और अशुद्धता के सम्बन्ध में नियम यह है कि जब पर्याय द्रव्याश्रय से परिणमन करती है, तब शुद्ध और जब पराश्रय से परिणमन करती है, तब अशुद्ध होती है; परन्तु वह अशुद्धता न तो पर में से ही आई है और न द्रव्यस्वभाव में से ही आई है।

प्रश्न : पर्याय स्वयं षट्कारक से स्वतंत्र परिणमती है और पर्याय को पर्याय का अपना ही वेदन है तो ध्रुव का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य वह तो मूल वस्तु है। ध्रुव का लक्ष करने पर ही पर्याय में आनन्द का वेदन आता है; इसीलिए ध्रुव मूल वस्तु है।

प्रश्न : पर्याय को दूसरे द्रव्य का सहारा नहीं है तो क्या अपने द्रव्य का भी सहारा नहीं है ?

उत्तर : पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र है।

प्रश्न : पर्याय तो पामर है न ?

उत्तर : पर्याय पामर नहीं है, वह तो सम्पूर्ण द्रव्य को स्वीकारती है, उसे पामर कैसे कहें ? पर्याय में महासामर्थ्य है। सम्पूर्ण द्रव्य को स्पर्श किये बिना उसे स्वीकारती है। ज्ञान की एक पर्याय में इतनी शक्ति है कि छहों द्रव्यों को जान ले। इसकी शक्ति की अलौकिक बात है।

प्रश्न : द्रव्य और पर्याय में से बल किसका अधिक है ?

उत्तर : द्रव्य का बल अधिक है। पर्याय तो एकसमय जितनी ही है और द्रव्य तो त्रिकाली सामर्थ्य का पिण्ड है।

समाचार दर्शन -

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न

नागपुर (महा.) : यहाँ श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर, नेहरु पुतला इतवारी के 23 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में रेशमबाग स्थित बनारस नगरी में श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट नागपुर के आयोजकत्व में आयोजित श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव गुरुवार, दिनाँक 1 जनवरी से बुधवार 7 जनवरी 2015 तक अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रतिदिन प्रवचनसार पर प्रवचनों का लाभ मिला। आपके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी छिन्दवाड़ा, पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली, पण्डित अशोकजी लुहाड़िया मंगलायतन, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा इत्यादि अनेक विद्वानों का सानिध्य प्राप्त हुआ।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली द्वारा सह-प्रतिष्ठाचार्य ब्र. श्रेणिकजी जैन जबलपुर, पण्डित मधुकरजी जैन जलगाँव, पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित रमेशजी ज्ञायक इन्दौर, पण्डित अशोककुमारजी उज्जैन, पण्डित सुबोधजी जैन ग्वालियर, पण्डित अंकुरजी शास्त्री मैनपुरी के सानिध्य में शुद्ध तेरापंथ आम्नायानुसार संपन्न हुई।

बालक पार्श्वकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती स्नेहलता-जैनबहादुरजी कानपुर को प्राप्त हुआ। महोत्सव के सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री निकुंज-शची सिंघई, कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री सुरेन्द्र-नीतू देवड़िया एवं महायज्ञनायक-नायिका श्री विवेक-नेहा देवड़िया थे। यागमंडल विधान का उद्घाटन सेठ श्री गुलाबचंदजी जैन सुभाष ट्रांसपोर्ट सागर, प्रतिष्ठा मंच का उद्घाटन श्री कपूरचंद अनिलकुमार जैन 'डैडी' परिवार भोपाल, सिंहद्वार उद्घाटन श्री शान्तिकुमारजी जैन जबलपुर एवं प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री विजयजी बड़जात्या व श्री पदमजी पहाड़िया इन्दौर ने किया। महोत्सव का ध्वजारोहण श्री अशोककुमार जैन सुभाष ट्रांसपोर्ट भोपाल के करकमलों द्वारा किया गया।

महोत्सव के विशिष्ट कार्यक्रमों के अन्तर्गत 45 फीट का कांच से बना विशाल पालना दर्शनीय रहा। दिनांक 3 जनवरी को बाल तीर्थंकर का सर्वप्रथम अभिषेक करने का सौभाग्य श्री परेश सौभाग्यमलजी जैन शिरपुर को मिला। पालना झूलन का उद्घाटन श्री प्रेमचन्दजी बजाज परिवार कोटा ने किया । सर्वप्रथम आहारदान का सौभाग्य श्री प्रदीप सुदीप राकेश मुन्नालाल जैन सागर परिवार नागपुर को प्राप्त हुआ।

इस महोत्सव में पार्श्वनाथ भगवान, महावीर भगवान, नेमिनाथ भगवान, मल्लिनाथ भगवान एवं वासुपूज्य भगवान की प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा की गई। विधिनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान के भेंटकर्त्ता एवं विराजमानकर्त्ता श्री विमलकुमारजी जैन नीरू केमिकल्स दिल्ली थे। संपूर्ण महोत्सव में पूजन, प्रवचन, आध्यात्मिक गोष्ठियों, बालकक्षाओं, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम मची रही। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत 'इतिहास के झरोखे से, मुक्ति के सोपान, विराधना का फल' आदि नाटिकायें आयोजित हुईं। संपूर्ण कार्यक्रम में लगभग 2-3 हजार साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

महोत्सव को सफल बनाने में समिति के समस्त पदाधिकारियों के साथ-साथ श्री कुन्दकुन्द कहान ग्रुप नागपुर, श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल काटोल, श्री अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन नागपुर, श्री अखिल भारतीय जैन महिला फैडरेशन नागपुर, श्री महावीर विद्या निकेतन समिति नागपुर, श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला नागपुर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

कार्यक्रम के दौरान दिनांक 4 जनवरी को नागपुर-रामटेक-जबलपुर मार्ग पर निर्माणाधीन भव्य 'तीर्थधाम गन्धकुटी जिनालय' संकुल के अन्तर्गत 'श्री गन्धकुटी जिनालय' एवं 'श्री महावीर विद्या निकेतन' के नवीन छात्रावास का शिलान्यास भी अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक संपन्न किया गया।

महोत्सव के सभी कार्यक्रम पण्डित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर एवं डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर के निर्देशन में सम्पन्न हुये। •

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर संपन्न

देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ कहान नगर में भगवान श्री महावीरस्वामी जिनमंदिर के 25वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में दिनांक 25 से 29 दिसम्बर तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं श्री तीनलोक मंडल विधान आयोजित किया गया।

इस अवसर पर प्रतिदिन पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड के दोनों समय समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के दो समय इष्टोपदेश एवं अकृत्रिम चैत्यालय विषय पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। प्रतिदिन गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अतिरिक्त स्थानीय विद्वान पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री के अष्टपाहुड एवं ब्र. हेमचंदजी हेम के समयसार पर व्याख्यानों का लाभ मिला। सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन हुआ।

इस प्रसंग पर आयोजित तीन लोक मण्डल विधान का आयोजन श्रीमती भावनाबेन-सचिनभाई शाह एवं श्रीमती सुनिताबेन-नितिनभाई शाह परिवार मुम्बई की ओर से किया गया। विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित दीपकजी धवल द्वारा संपन्न कराये गये।

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की -

साहित्यिक व खेलकूद प्रतियोगिताएें सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल महाविद्यालय में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु महाविद्यालय द्वारा दिनाँक 25 दिसम्बर 2014 से 2 जनवरी 2015 तक विभिन्न साहित्यिक व खेलकूद प्रतियोगितायें सम्पन्न हुई।

इस अवसर पर दिनांक 25 दिसम्बर को प्रात: प्रवचनोपरान्त पण्डित रतनंचदजी भारिल्ल की अध्यक्षता में श्री इन्दरचन्दजी कटारिया जयपुर द्वारा प्रतियोगिताओं का उद्घाटन हुआ। इस प्रसंग पर पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील एवं पण्डित परमात्मप्रकाशजी का उद्बोधन प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त ब्र. यशपालजी जैन, डॉ. दीपकजी वैद्य, श्री अजितजी तोतुका, पण्डित संजयजी बड़ामलहरा, पण्डित गोम्मटेशजी चौगुले, पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री आदि भी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन पण्डित सोनूजी शास्त्री ने किया।

कार्यक्रम के अन्तर्गत दिनांक 25 दिसम्बर को प्रात: **श्लोकपाठ प्रतियोगिता** एवं रात्रि में **शास्त्री वर्ग की तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता,** दिनांक 26 दिसम्बर को प्रात: **अंग्रेजी भाषण प्रतियोगिता** एवं रात्रि में **संस्कृत संभाषण प्रतियोगिता,** दिनांक 27 दिसम्बर को प्रात: **भाषण प्रतियोगिता (उपाध्याय वर्ग)** एवं रात्रि में **काव्यपाठ प्रतियोगिता,** दिनांक 28 दिसम्बर को प्रात: **उपाध्याय वर्ग की तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता** एवं रात्रि में **भजन प्रतियोगिता,** दिनांक 29 दिसम्बर को प्रात: **भाषण प्रतियोगिता (शास्त्री वर्ग)** एवं रात्रि में **अंत्याक्षरी प्रतियोगिता** का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर डॉ. श्रीयांसजी सिंघई (जैनदर्शन विभागाध्यक्ष - राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर), डॉ. प्रभाकरजी सेठी, पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, डॉ. नीतेशजी शाह, डॉ. भागचंदजी जैन, पण्डित राजेशजी शास्त्री शाहगढ, पण्डित प्रमोदजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित संजयजी शास्त्री बड़ामलहरा, पण्डित मनीषजी कहान, पण्डित प्रमोदजी शाहगढ, पण्डित संजीवजी खड़ैरी, पण्डित अनिलजी शास्त्री खनियांधाना, डॉ. राजधरजी मिश्र (राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय), डॉ. मुकेशजी, डॉ. वाई.एस. रमेशजी (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर), डॉ. सुभाषजी (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान), डॉ. नवलकिशोरजी दुबे, श्री ताराचंदजी सोगानी, श्री जे.के. अग्रवाल, श्रीमती कमलाजी भारिल्ल, श्रीमती वंदनाजी, श्रीमती समता गोदीका आदि महानुभावों का अध्यक्ष एवं निर्णायक के रूप में समागम प्राप्त हुआ।

इसी क्रम में खेलकूद प्रतियोगिताओं में कबड्डी, खो-खो, बैडमिंटन, कैरम, शतरंज आदि प्रतियोगिताओं का भी आयोजन हुआ।

वॉलीबॉल प्रतियोगिता का उद्घाटन डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने किया। बैडमिन्टन प्रतियोगिता का उद्घाटन पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित सोनूजी शास्त्री द्वारा किया गया।

सभी प्रतियोगिताओं का संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों द्वारा किया गया। इस प्रकार संपूर्ण कार्यक्रम अत्यंत सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

गोष्ठियाँ सानन्द संपन्न

सागर (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अंकुर कॉलोनी मकरोनिया स्थित श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में दिनांक 20 से 25 दिसम्बर तक तीन गोष्ठियों का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित राजेन्द्रजी जबलपुर, पण्डित शिखरचंदजी विदिशा, पण्डित सुदीपजी बीना, पण्डित महेन्द्रजी अमायन, पण्डित नितुलजी शास्त्री इन्दौर आदि विद्वानों का समागम प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम में नि:शंकित अंग, वात्सल्य अंग एवं प्रभावना अंग पर गोष्ठियाँ हुईं, जिसमें लगभग 500 साधर्मियों ने लाभ लिया। कार्यक्रम का निर्देशन श्री अरुणजी मोदी ने किया।

दिनांक 26 से 30 दिसम्बर तक छहढाला प्रवचन शिविर का आयोजन हुआ। इसमें गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के छहढाला पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित मनीषजी शास्त्री खतौली द्वारा प्रवचनों का लाभ मिला।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर संपन्न

ध्रुवधाम-बांसवाड़ा (राज.) : यहाँ दिनांक 21 से 28 दिसम्बर तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं सिद्धचक्र महामंडल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर प्रतिदिन गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के वीडियो प्रवचन के उपरान्त प्रारम्भिक 5 दिन दोनों समय ब्र. श्रेणिकजी द्वारा समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा अन्त के 3 दिन पण्डित सुनीलजी शास्त्री राजकोट द्वारा नियमसार पर प्रवचन हुये। इसके अतिरिक्त पण्डित प्रकाशजी छाबड़ा इन्दौर द्वारा प्रात: विधान की जयमाला का अर्थ एवं सायंकाल प्रवचनसार पर प्रवचन हुए। स्थानीय विद्वानों में पण्डित राजकुमारजी शास्त्री, पण्डित प्रवीणजी शास्त्री, पण्डित जगदीशजी पंवार, पण्डित रीतेशजी शास्त्री आदि विद्वानों का भी समागम प्राप्त हुआ।

विधान के मुख्य आमंत्रणकर्त्ता स्व. भलावत श्रीमती धापूबाई धर्मपत्नी स्व.श्री मणीलाल जी की स्मृति में श्री वीरेन्द्र कुमार मथुरालालजी परिवार (पालोदा) इन्दौर थे।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल द्वारा संपन्न कराये गये।

निबन्ध लिखकर भेजें

श्री प्रियंकारिणी महिला मंडल के तत्त्वावधान में **जैनदर्शन में कर्म सिद्धान्त-एक चिन्तन** (चारों अनुयोगों के परिप्रेक्ष्य में) विषय पर अधिकतम 1500 शब्दों में निबंध लिखकर भेजें। निबंध के साथ अपना पूरा पता व फोन नं. अवश्य लिखें। अन्तिम तिथि -11 फरवरी 2015 **निबंध भेजने का पता -** श्रीमती मालती सिंघई, सिघई सॉ मिल, छोटा तालाब के सामने छिन्दवाड़ा (म.प्र.); पायलवाला ज्वेलर्स, गोलगंज, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

वेदी शिलान्यास संपन्न

विदिशा (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन महावीर परमागम मंदिर में दिनांक 17 व 18 दिसम्बर 2014 को वेदी शिलान्यास समारोह एवं रत्नत्रय मंडल विधान संपन्न हुआ।

इस अवसर पर स्थानीय विद्वान पण्डित ज्ञानचंदजी, पण्डित शिखरचंदजी के अतिरिक्त ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, ब्र. सुनील भैया शिवपुरी, पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल आदि का सानिध्य प्राप्त हुआ।

दिनांक 17 दिसम्बर को श्री रत्नत्रय मंडल विधान का आयोजन हुआ। दिनांक 18 दिसम्बर को गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के अतिरिक्त ब्र. सुनील भैया के प्रवचनोपरांत शिलान्यास सभा का आयोजन किया गया। वेदी शिलान्यास श्री अजितप्रसादजी दिल्ली के करकमलों से हुआ। इनके अतिरिक्त सभी विद्वानों एवं अतिथिगणों द्वारा भी वेदी शिलान्यास किया गया।

आगामी कार्यक्रम ...

आचार्य कुन्दकुन्द की तपोभूमि पोन्नूरमलै में अष्टाह्निका महापर्व पर **श्री पंचमेरु नंदीश्वर मंडल विधान एवं आध्यात्मिक शिविर** का आयोजन दिनांक 26 फरवरी से 5 मार्च 2015 तक किया जा रहा है। इस अवसर पर पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली द्वारा कारणशुद्धपर्याय एवं पण्डित श्री चेतनभाई मेहता राजकोट द्वारा समयसार (गाथा 14-15) पर कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा। शिविर में पधारने के इच्छुक साधर्मीजन **9300642434 (विराग शास्त्री)** पर संपर्क कर रजिस्ट्रेशन नम्बर प्राप्त कर लें। पोन्नूर मार्ग सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने हेतु **04183-291136, 225033** पर संपर्क करें। चैन्नई से पोन्नूर तक के लिए सरकारी बस सेवा उपलब्ध है।

शोक समाचार

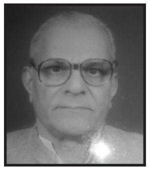

अहमदाबाद (गुज.) निवासी श्री गम्भीरमलजी जैन सेमारी वालों का 82 वर्ष की आयु में दिनांक 1 जनवरी 2015 को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा आयोजित होने वाले शिविरों में नियमित रूप से रहकर धर्मलाभ लेते थे। आप और आपका पूरा परिवार टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित होने वाली तत्त्वप्रचार की गतिविधियों से गहराई से जुड़े हुए हैं, उनका भरपूर लाभ लेते हैं और सहयोग देते हैं। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक हेतु 5000/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

(आगामी कार्यक्रम...)

महामस्तकाभिषेक एवं तृतीय वार्षिक महोत्सव

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा फरवरी 2012 में ऐतिहासिक एवं भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया था; उस महामहोत्सव की यादें सभी को पुन: ताजा हो जावें, इस हेतु यहाँ पंचतीर्थ जिनालय एवं सीमंधर जिनालय में विराजमान जिनबिम्बों का **महामस्तकाभिषेक एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का तृतीय वार्षिक महोत्सव शुक्रवार दिनांक 20 फरवरी से रविवार दिनांक 22 फरवरी 2015 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में अनेक मांगलिक कार्यक्रमों सहित आयोजित होने जा रहा है।**

इस त्रिदिवसीय महोत्सव में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा आदि अनेक विद्वानों का प्रवचन, प्रौढ कक्षा व गोष्ठियों के माध्यम से अपूर्व लाभ प्राप्त होगा।

इसके अतिरिक्त नित्य-नियम पूजन, जिनेन्द्र भक्ति, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का भी आयोजन किया जायेगा।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के साथ पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित अनिलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर और टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के छात्रगण सम्पन्न करावेंगे।

इस मंगल अवसर पर पधारने हेतु आप सभी सादर आमंत्रित हैं।

भोजन एवं आवास की समुचित व्यवस्था हेतु अपने आगमन की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय को अवश्य भेजें।

विशिष्ट आकर्षण :- (1) गुरुदेवश्री के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन, (2) पंचकल्याणक विधान का आयोजन, (3) अतिआकर्षक जन्मकल्याणक की इन्द्रसभा, (4) सांस्कृतिक कार्यक्रम (5) जिनेन्द्र भक्ति संध्या

संपर्क सूत्र – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015
फोन नं. 0141-2705581, 2707458

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में बनने वाले मेरु एवं डोम का दृश्य

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में 27900 स्क्वायर फीट के डोम का दृश्य

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये रेनबो ऑफसेट प्रिंटर्स, बाईस गोदाम, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**